अप्रेल १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म-कथन

अलविदा... बाबू भैया!

तुम मुझसे डेढ़ वर्ष पहले जन्मे। जिस जननी की कोख में नौ महीने लेट कर तुम जन्मे, उसी में लेट कर मैं भी जन्मा। इतने कम अंतराल के पश्चात तुम्हारे पीछे-पीछे जन्म ले कर मैंने मां के लाड-प्यार में और लालन-पालन में तुम्हारा हिस्सा छीना, पर तुम इससे नाराज नहीं हुए। सामान्य शिशु की मानसिकता यही होती है कि जब उसकी मां की गोद में कोई दूसरा आ बैठता है, जब उसके स्तनों से कोई दूसरा दुग्धपान करने लगता है तब उसके मन में उस प्रतिद्वंद्वी के प्रति गहरी ईर्ष्या जागती है, द्वेष और दौर्मनस्यता जागती है। पर तुम तो असामान्य थे। बड़े होने पर मुझे बताया गया कि तुम मुझे देख-देख कर बहुत प्रसन्न होते थे। जब मैं खटोले पर लेटे हुए अपने हाथ-पांव इधर-उधर फटकारता था तब तुम मुझे एकटक देखते और मुस्कराते रहते थे और जब मैं अपने दाहिने पांव का अंगूठा मुँह में लेता तो तुम यह देख कर खिलखिला कर हँस पड़ते थे।

हम जरा बड़े हुए। तुम्हें मां के दूध का भरपूर पोषण नहीं मिला, इसलिए तुम शरीर से दुबले-पतले और बहुत कमजोर रह गए। तुम्हारे हिस्से का दूध मैंने पिया, अतः मैं शरीर से हृष्ट-पुष्ट हुआ। ६-७ वर्ष की उम्र में जब हम मांडले की मारवाड़ी पाठशाला में पढ़ने जाते थे तब कोई-कोई हमें जुड़वा भाई कहता और कोई-कोई मुझे बड़ा भाई कह देता। पर तुम जरा भी बुरा न मानते।

स्कूल के मास्टर पंडित कल्याणदत्त दूबे का हम दोनों के प्रति बड़ा स्नेह था। स्कूल में चौक-चांदनी का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। दूबेजी सब बच्चों से रामचरित मानस का पाठ करवाते। हम दोनों भी झूम-झूम कर सब के साथ समवेत स्वर में दोहे और चौपाइयां गाते। त्योहार के दिन विद्यार्थियों की बानर सेना का जुलूस निकलता। मेरा एक सहपाठी पुरुषोत्तम उम्र में तो बहुत बड़ा नहीं था परंतु डील-डौल में और शारीरिक बल में हमसे लगभग ड्योढ़ा था। दूबेजी उसे हनुमान बनाते। लाल रंग का कच्छा पहनाते। कमर में एक लंबी पूछ लगा देते, मुँह पर हनुमानजी का मुखौटा पहना देते, हाथ में गदा पकड़ा देते, जिसे घुमा-घुमा कर वह खूब उछल-कूद मचाता। दूबेजी हम दोनों को राम-लक्ष्मण बनाते। हमारे सिर पर मुकुट और हाथ में धनुष-बाण देकर उसके दोनों कंधों पर बैठा देते। हम दोनों को कंधे पर उठाए-उठाए जब वह धमाचौकड़ी मचाता तो तुम भयभीत हो जाते। अपने लिए नहीं, मेरे लिए। जब कभी वह अपनी मस्ती में किसी दो-ढाई फिट ऊंचे चबूतरे से नीचे जमीन पर कूदता तो तुम मुझे कसकर पकड़ लेते। कभी-कभी रो भी पड़ते और हनुमान से अनुनय-विनय करते कि वह इतनी ऊंचाई से न कूदे। कहीं सतुआ गिर न पड़े। उन दिनों तुम मुझे 'सतुआ' कह कर पुकारते थे और मैं तुम्हें 'बबुआ' कह कर। अन्य लोग भी हम दोनों को इन्हीं नामों से पुकारते थे। मैं कहता कि मैंने हनुमानजी को कसकर पकड़ रखा है, मैं नहीं गिरूंगा, तुम मत घबराओ। पर इस खेल-कूद के समय तुम्हारे चेहरे की हवाइयां उड़ी रहतीं। तुम मेरी बांह बार-बार पकड़ते कि कहीं मैं गिर न पड़ूं। उत्सव का खेल पूरा होता और हम दोनों हनुमानजी के कंधे से नीचे उतरते, तब तुम राहत की सांस लेते। दूबेजी की शिक्षा ने उसी उम्र में तुम्हारे मन में राम का भायपभाव कूट-कूट कर भर दिया और मैं अपने आप को कभी भरत समझता तो कभी लक्ष्मण।

थोड़ी-सी उम्र और बढ़ी। सायंकालस्कूल की छुट्टी होने पर हम घर आते। कुछ खा-पी कर मैं सड़क पर साथियों के साथ खेलने निकल पड़ता। तुम शरीर से दुर्बल थे। खेलने में रुचि नहीं थी, पर मुझे अकेले कैसे छोड़ते? अतः जहां हम खेलते उसी के समीप किसी चबूतरे पर बैठ कर हमें खेलते हुए देखते रहते।

मैं बहुत ऊधमी था और खेल-कूद में बहुत समय बिताता था। अतः मेरे कपड़े मैले भी अधिक हो जाते थे और फटते भी शीघ्र जाते थे। हम दोनों की एक जैसी धोती और एक ही माप की एक जैसी कमीज हुआ करती थी। सुबह नहा कर हम दोनों अपने कपड़े स्वयं धोते थे। मैं देखता कि तुम हमेशा मेरे नहाने के बाद नहाते और मेरी धोई हुई धोती और कमीज को फिर धोकर उसका मैल पूरी तरह दूर करते। तुम्हारे कपड़े न इतने मैले होते थे और न इतने फटते थे। बहुत बार देखता कि सुबह नहाने जाते तो जो धोती कमीज अधिक साफ होती वह मेरी ओर सरका देते और जो जरा मैली होती वह अपने लिए रख लेते। इस विषय में मेरा विरोध करना कोई अर्थ नहीं रखता था। मेरी जो धोती और कमीज जरा फट जाती उसे मां को देकर सिलाई करवा लेते और उसे अपने पहनने के काम में लेते। जरा-सा भी मैला अथवा फटा या सिलाई किया हुआ कपड़ा मुझे कभी पहनने न देते। छोटे भाई के प्रति प्यार और त्याग का यह भायपभाव का आदर्श तुम्हारे मन में खूब भरा था।

कुछ समय और बीता। मास्टर कल्याणदत्तजी दूबे स्कूल की नौकरी छोड़ कर अपने देश लौट गए। स्कूल वालों ने अब पाठशाला की दोनों कक्षाओं के लिए दो अध्यापक नियुक्त किए। तुम्हारी कक्षा में जो मास्टरजी नियुक्त हुए वे बहुत नम्र स्वभाव के थे। बहुत धीमी और मीठी आवाज थी उनकी। पर मेरी कक्षा के मास्टरजी उनके बिल्कुल विपरीत, अत्यंत उग्र स्वभाव के थे और बड़ी कर्कश आवाज थी उनकी। उनका नाम था रामनारायण चौबे।

उनका शरीर तो बौना नहीं था पर दोनों हाथ बौने थे। जहां लोगों के हाथ की कुहनियां होती हैं वहां से उनके हाथ की हथेलियां शुरू होती थीं। इन बौने हाथों की बौनी हरकतें देख कर मेरी कक्षा के विद्यार्थी बहुत बार हँस पड़ते थे। हमें बचपन से ही माता-पिता ने गुरुभक्ति का पाठ पढ़ाया था। अतः मैं कभी नहीं हँसा, बल्कि और बच्चे हँसते तो मुझे बहुत बुरा लगता। मैं मन ही मन सोचता कि इनको विद्या कैसे मिलेगी! चौबेजी मुझ पर बहुत प्रसन्न रहते थे। परंतु जो अन्य लड़के उन पर हँसते थे उनकी किसी न किसी बहाने से खूब पिटाई करते थे। दूबेजी ने कभी बेंत नहीं रखी और न ही

तुम्हारी कक्षा के नए मास्टरजी ने। परंतु हाथ छोटे होने के कारण चौबे मास्टरजी को बेंत रखनी पड़ती थी। अपने उग्र स्वभाव के कारण वे इसका प्रयोग भी बड़ी बेरहमी के साथ करते थे। इसलिए शीघ्र ही बच्चों के मन में बहुत भय बैठ गया था।

एक दिन उन्होंने किसी बच्चे को बड़ी निर्दयता से पीटा। उसकी पीठ पर नीले दाग पड़ गए। दूसरे दिन जब हम स्कूल गए तब तुमने मुझे जबरन अपनी कक्षा में अपने पास बैठा लिया। मैं बहुत ना करता रहा, पर तुम नहीं माने। चौबेजी ने देखा तो आगबबूले होकर आए और कहा कि इसे अपनी कक्षा में जाने दो। तुमने गलबांही डाल कर मुझे खूब कस कर पकड़ लिया। बात बनती न देख कर चौबेजी ठंडे पड़े और समझाने लगे कि मैं तुम्हारे भाई को क्यों पीटूंगा? यह तो पढ़ने में तेज है। अपना होमवर्क भी रोज करके लाता है। अन्य बच्चों की तरह शरारतें भी नहीं करता। मेरी नकल भी नहीं करता। मैं भला इसे क्यों पीटूंगा? परंतु तुम टस से मस नहीं हुए। रो-रो कर यही कहते रहे कि आप मेरे भाई को बेंत से पीटोगे। मैं इसको आप के पास नहीं जाने दूंगा। चौबेजी झुँझला कर स्कूल की प्रबंध कमेटी के अध्यक्ष श्री जयनारायणजी ल्हीला के पास गये और सारी हकीकत समझा कर उन्हें अपने साथ स्कूल ले आए। जयनारायणजी बड़े सौम्य स्वभाव के वृद्ध सज्जन थे। उन्होंने आकर तुम्हें बहुत समझाया और यह आश्वासन दिया कि चौबे मास्टरजी तुम्हारे छोटे भाई को बिल्कुल नहीं पीटेंगे। तब तुम और जोर-जोर से रोने लगे। मुझे और अधिक कस कर पकड़ लिया। मानो बेंत मुझ पर लगेगी तो घाव तुम्हारे शरीर पर होगा। इस काल्पनिक पीड़ा से तुम रोए जा रहे थे। सचमुच हम दोनों का पारस्परिक स्नेह-संबंध ऐसा ही था। हम एक दूसरे के प्रति कितने संवेदनशील थे, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण लगभग तीस वर्ष बाद बर्मा में घटी दो घटनाओं में प्रकट हुआ और सिद्ध हुआ कि –

दोनों ओर प्यार पलता है,
दीपक तो जलता ही है,
पर शलभ भी जलता है।

जब किसी के भी समझाने पर तुम मुझे अपनी कक्षा में जाने देने के लिए राजी नहीं हुए तो अंततः चौबेजी को ल्हीलाजी ने कहा कि आप सचमुच बच्चों को जरूरत से अधिक पीटते हैं। इसी वजह से इस बच्चे के मन में दहशत बैठ गयी है। चौबेजी बहुत शर्मिंदा हुए और उन्होंने सब के सामने अपनी बेंत तोड़ कर बाहर फेंक दी और प्रतिज्ञा की कि आज से मैं किसी बच्चे को बेंत से नहीं पीटूंगा। और इस प्रकार तुम्हारी जीत हुई। मैं अपनी कक्षा में गया और चौबेजी ने इसके बाद किसी बच्चे को बेंत से नहीं पीटा।

उम्र कुछ और बढ़ी। हम दोनों मारवाड़ी स्कूल छोड़ कर खालसा स्कूल में भर्ती किए गए। मारवाड़ी स्कूल तो घर के पास ही था। अतः पैदल चले जाते थे। खालसा स्कूल दूर था। पैदल जाने में समय भी लगता और श्रम भी होता। अतः पिताजी ने हम दोनों के लिए दो छोटी साइकिलें खरीद देने का निश्चय किया। उस समय दूकानदार के पास उस साइज की केवल एक ही साइकिल थी। उसे खरीद लाए और दूसरी के लिए आर्डर दे आए, जो कि दो-तीन सप्ताह बाद रंगून से आने वाली थी। साइकिल देख कर तुम अड़ गए कि यह तुम्हारे लिए है। तुम उसे अपनी सायकल तभी मानोगे जब दूसरी आ जायगी। चलानी तो दोनों ने सीखी पर जब तक एक ही साइकिल थी तब तक तुमने उसे अपनी साइकिल नहीं स्वीकारी। एक होगी तो छोटे भाई की ही होगी। अंततः तुम्हारे भायपभाव की जीत हुई। साइकिल मैं ही चलाता और तुम उसके पीछे बैठ कर मेरे साथ स्कूल जाते-आते। कुछ दिनों के बाद दूसरी साइकिल आयी। उसे देख कर सब चकित रह गए। वह नए मॉडल की बड़ी खूबसूरत साइकिल, एक नवल नवोढा की भांति खूब सजी-धजी थी। बहुत सुंदर और बड़ी मुलायम गद्दी, चमकीले काले रंग पर सुनहरी धारियों की पेंटिंग बड़ी आकर्षक लगती थी। घंटी ऐसी कि जिसे बजाने पर उसकी मधुर टुनटुनाहट देर तक हवा में गूंजती रहती। ऐसी सुंदर साइकिल मांडले में पहली बार आयी। पहली साइकिल इसके सामने बड़ी भद्दी और बदसूरत लगती थी। इसे देख कर तुम्हारा भायपभाव फिर जागा। तुम अड़ गए कि यह नई साइकिल मेरे लिए है और पुरानी साइकिल अब तुम चलाओगे। मेरे हजार ना-ना करने पर भी तुम अपनी जिद्द पर अड़े रहे और आखिर जीत तुम्हारी हुई। इस प्रकार के न जाने अन्य कितने प्रसंग आए जबकि अग्रज का प्यारभरा भायपभाव अनुज को जीतता रहा।

एक और घटना घटी। बरमी सरकार की ओर से आयोजित किसी एक अखिल ब्रह्मदेशीय जूनियर्स की परीक्षा में मेरे नंबर सबसे अधिक आए तो तुम्हारी खुशियों का ठिकाना नहीं रहा। मांडले के यडनाबौं हॉल में एक बड़ा आयोजन किया गया, जिसमें बर्मा के तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर लॉर्ड क्रोक्रीनने मुझे एक मैडल दिया। तुम खुशियों से नाच उठे। मुझे याद है कि तुम उसे समाज के न जाने कितने लोगों को दिखाते फिरे –देखो, मेरे 'सत्य' को यह मैडल मिला है। तब तक तुम मुझे 'सतुआ' के बदले 'सत्य' के नाम से संबोधित करने लगे थे परंतु मेरे लिए तो तुम 'बबुआ' ही रहे। कभी-कभी तुम्हें 'बाबू भैया' कह दिया करता था।

सातवीं कक्षा में उत्तीर्ण होने पर तुम्हारी पढ़ाई छुड़ा कर तुम्हें दूकान में जोत दिया गया। अगले वर्ष मैं भी सातवीं कक्षा में उत्तीर्ण हुआ। पिताजी ने मेरी भी पढ़ाई छुड़ाने का निर्णय किया। मैं आगे पढ़ने के लिए बहुत लालायित था। पर मेरी कोई नहीं सुन रहा था। तुम मेरे वकील बने। पिताजी और ताऊजी ने तुम्हारी जिद के कारण एक वर्ष और पढ़ने की अनुमति दे दी। पर मैट्रिक के लिए तो तीन वर्ष चाहिए थे। आखिर तुमने उन पर बहुत दबाव डाल कर दो वर्ष की छूट का फैसला करवा लिया। पर दो वर्ष में मैट्रिक कैसे होगी? तुम मुझे हेड मास्टर दीवानसिंहजी के पास ले गए और उनसे सिफ़ारिश की कि मुझे डबल प्रमोशन दिया जाय। सातवीं से सीधे नवीं कक्षा में बैठाया जाय ताकि बड़ों की ओर से मिली दो वर्ष की छूट में मैं मैट्रिक पास कर लूं। हेडमास्टरजी दया की मूर्ति थे। बहुत लंबी सन जैसी सफेद मूंछ और दाढ़ी, किसी पूर्वकाल के ऋषि जैसे लगते थे। मेरे प्रबल आग्रह और तुम्हारी गिड़गिड़ाहटभरी याचना से उनका जी पसीजा। वे जानते थे कि जैसे तुम अपनी कक्षा में सदा प्रथम आते थे, वैसे ही मैं भी अपनी कक्षा में प्रथम आता रहा हूं। उन्होंने बड़े मीठे स्वर में एक शर्त रखी कि ९ वीं कक्षा की प्रथम

तिमाही परीक्षा में यदि मैं सदा की भांति कक्षा में प्रथम आया तो डबल प्रमोशन मान लिया जायगा, अन्यथा मुझे ८वीं में बैठना पड़ेगा। मैं कुछ बोलूं इसके पहले तुमने यह शर्त मंजूर कर ली और मुझे नौवीं कक्षा के मास्टर जयसिंहजी के पास ले गए। उनको इस बात पर राजी कर लिया कि अगले दो महीने की छुट्टियों में वे मुझे ट्यूशन देंगे। इस प्रकार तुम्हारी भाग-दौड़ से मेरी मैट्रिक तक की पढ़ाई दो वर्षों में पूरी हुई।

एक और घटना घटी। किसी ज्योतिषी ने मेरे बारे में भविष्यवाणी कर दी कि अठारह वर्ष की उम्र पूरी होने के पहले मेरे जीवन को पानी से खतरा है। इसे सुन कर मां जितनी चिंतामग्न हुई, उससे कहीं अधिक तुम हुए। सारा परिवार पर्व-त्योहारों पर इरावती नदी में नहाने जाया करता था। इरावती नदी बहुत विशाल है। इसका पाट बहुत चौड़ा है और गहराई भी बहुत अधिक है। जरा-सी असावधानी होते ही डूबने का खतरा प्रबल हो जाता है। अतः नदी के घाट पर पक्की सीढ़ियां बनी हुई थीं। हम नहाने के लिए सीढ़ियों पर उतरते तो गले भर पानी तक रुक जाते और वहीं डुबकी लगा कर नहाते और जल-किलोल करते। पर इस भविष्यवाणी के बाद हम कमर तक ही पानी में उतरते। तुम मुझे आगे बढ़ने से रोक देते। मुझे गहरे पानी में नहाने का शौक था। पर तुम मेरी कमर कसकर पकड़ लेते और मुझे आगे नहीं जाने देते। अतः वहीं ५-१० डुबकियां लगा कर स्नान पूरा कर लेना पड़ता। मेरी हर इच्छा पूरी करने के लिए तुम अपनी जी-जान लगा दिया करते थे। परंतु इस मामले में इतने कठोर हो गए थे कि मेरे हजार चाहने पर भी तुमने कभी मुझे कमर से नीचे पानी में नहीं उतरने दिया। १८ वर्ष की उम्र पूरी होने पर तुम्हारे प्रसन्नताभरे संतोष का कोई ठिकाना नहीं था।

हम व्यापार में लगे। तुम सुबह ७ बजे से रात के १०-११ बजे तक काम-धंधे में और तत्संबंधी हिसाब-किताब में व्यस्त रहते। पर न मुझे दूकान पर बैठ कर दूकानदारी करने में रुचि थी और न हिसाब-किताब लिखने अथवा समझने में। मैं तो बाह्य संपर्क स्थापन में बहुत-सा समय बिताता। उससे भी ज्यादा समय सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और शैक्षणिक प्रवृत्तियों में लगाता। तिस पर भी तुम लोगों से यही कहते कि कमाई तो मेरे हाथों होती है। तुम तो केवल व्यवस्थापन का काम करते हो। मुझे यह सब बड़ा अटपटा लगता। पर क्या करता? यह तो तुम्हारा सहज स्वभाव था। मुझे लगता है कि अनेक जन्मों से तुम यही करते आए। अग्रज का त्याग और प्यारभरा भायपभाव तुम्हारे मन मानस में रच-पच गया था। इसी भायपभाव को निभाने के लिए तुम पुनः मेरे अग्रज के रूप में जन्मे।

जब मुझे सौभाग्य से विपश्यना मिली तब तुम भी इसी में जुड़ गए और अटूट रूप से जुड़ गए। जब मैं पूज्य गुरुजी का आशीर्वाद लेकर भारत आया और यहां सफलतापूर्वक शिविर पर शिविर लगने लगे तब तुम्हारे आह्लाद-प्रह्लाद की कोई सीमा नहीं थी। जब तक गुरुदेव जीवित रहे, मैं प्रत्येक शिविर के प्रत्येक शिविरार्थी की प्रगति-रपट तुम्हें हिंदी में लिख कर भेजता था और तुम उसे बर्मी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद करके पूज्य गुरुदेव को सुनाते थे। प्रत्युत्तर में पूज्य गुरुदेव की प्रसन्नता तो अभिव्यक्त होती ही थी, परंतु तुम्हारे उल्लासभरे उद्गार कम प्रेरणाजनक नहीं होते थे।

१९ जनवरी १९७१ को परमपूज्य गुरुदेव का शरीर शांत हुआ और मैंने उनके श्राद्ध स्वरूप बोधगया मंदिर में १० दिन के स्वयं शिविर की साधना पूरी की। तब भारत और विश्व में विपश्यना के पुनर्स्थापन करने की उनकी धर्मकामना पूरी कर सकने के लिए अपना सारा शेष जीवन समर्पित करने का शिव-संकल्प किया। अपने इस निर्णय की सूचना परिवार के बड़े छोटे सब सदस्यों को दी। उसके प्रत्युत्तर में मंगल भावों से भरा तुम्हारा जो शुभ संदेश मिला, वह मेरे धर्मदूत की चारिका के लिए पुष्ट पाथेय बना।

कुछ समय बीतने के बाद तुम भी भारत आए। तुम यह देख कर सन्न रह गए कि हमारे भारत के धर्मप्राण परिवार पर कितनी काली घटाएं छायी हुई हैं। विपश्यना में दृढ़ रह कर मंगल मैत्री के भावों में लीन रहने के अतिरिक्त और तुम कर भी क्या सकते थे। पहले भी तुम्हारे जीवन में कुछ एक अप्रिय प्रसंग आए पर उन्हें भी तुमने धर्म-धैर्य पूर्वक सहन किया ही।

बरमा रहते हुए पूज्य गुरुदेव ने तुम्हें अपना सहायक आचार्य नियुक्त किया था और तुम इस उत्तरदायित्व को कुशलतापूर्वक निभाते रहे थे। यहां आने पर जब शिक्षक नियुक्त किए गए तब तुम वरिष्ठ सहायक आचार्य का उत्तरदायित्व निभाते रहे। स्वयं पूज्य गुरुदेव से शिक्षित होने के कारण और उनके सहायक होने के कारण तुम भारत में आचार्य पद को भलीभांति सुशोभित करने में सक्षम थे। परंतु किसी पूर्व अकुशल कर्म के भुगतान स्वरूप तुम्हें पारकिंसोनिज्म जैसी दर्दनाक बीमारी में से गुज़रना पड़ा।

इसके कुछ दिन पूर्व जब मैं मद्रास गया हुआ था तब तुम मुझसे मिलने आए। लंबे शिविर में साधक अपनी कोई भूल स्वीकार करके विपश्यना द्वारा उस अकुशल कर्म के बीज को भून देने का सत्प्रयत्न करता है। जिन दिनों परिवार पर भयावह झंझावात चल रहा था, उन दिनों तुम्हारे पांव भी जरा-से लड़खड़ाए। इसी सामान्य-सी भूल को तुमने अत्यंत विह्वल होकर स्वीकार किया। अच्छा ही हुआ क्योंकि उसके बाद शीघ्र ही तुम पारकिंसोनिज्म के आघात से वाणी-विहीन हो गए थे।

पारकिंसोनिज्म के आघात को तुमने जिस धर्म-धैर्य के साथ सहन किया, वह विपश्यी साधकों के लिए सदा प्रेरणाप्रदायक रहेगा। रोगी को पूरा होश हो, वह सुन सके, पढ़ सके, देख सके परंतु अपने मन की कोई बात न वाणी से बोल सके और न हाथ से लिख कर प्रकट कर सके, इस विवशता की पीड़ा कितनी तीव्र होती है, इसका सही अनुमान भी नहीं किया जा सकता। परंतु तुम इस असहाय अवस्था में भी सदा मुस्कराते रहे। मुँह से कभी आह तक नहीं निकली। कभी आंखों से आंसू नहीं गिरे। विपश्यना का अभ्यास सतत बना रहा। इस बीच जब भी तुमसे मिला, तुम्हारा मुस्कराता हुआ चेहरा देख कर मन संतुष्ट हुआ। दो बार अचेत अवस्था में तुम्हें अस्पताल की इंटेंसिव केयर यूनिट में भर्ती किया गया। पहली बार मुंबई से टेलीफोन द्वारा तुम्हें मैत्री दी तो तुमने

सचेत होकर उसे स्वीकार की। दूसरी बार जब मैं मद्रास जाकर इस वार्ड में तुमसे मिला तब तुम पूर्णतया अचेत थे पर मैत्री देने पर उसे स्वीकार करते हुए मेरे हाथ को जोरों से पकड़े रखा। न जाने किस जन्म के कौन-से दुष्कर्म थे, जिन्हें विपश्यना के आधार पर यहीं भुगत लेना तुमने श्रेयष्कर समझा ताकि अधोगति से विमुक्त रह सको।

अस्पताल से घर आने पर तुम्हें पूर्णतया सचेत अवस्था प्राप्त हुई। अत्यंत शांत चित्त से तुम्हारा शरीर छूटा। चेहरे पर प्रकट हुई स्मितिपूर्ण शांति और प्रभापूर्ण कांति सब के लिए विस्मय का कारण बनी। इतने घोर पीड़ाजनक भयानक रोग से ग्रसित कोई व्यक्ति इस शांति के साथ प्राण छोड़ सकता है यह तुम्हारे जैसे सबल विपश्यना योगी का ही सफल सामर्थ्य था।

बाबू भैया, न जाने कितने जन्मों में पुण्य पारमिताओं के चयन-संचयन में तुम मेरे साथ रहे हो। इस जीवन में भी यही हुआ। भविष्य में भी पूर्ण भवमुक्त होने तक यही होता रहेगा। तब तक के लिए अलविदा...!

मुक्तिपंथ का चिरसंगी,
सत्यनारायण गोयन्का.